Chap-1

# प्र थ म अ ध्या य : पृ ष्ठ भू मि

# प्रथम अध्याय

## पृष्ठभूमि

### सामान्य परिचय :

भारत के पश्चिमांचल में स्थित कच्छ-प्रदेश कच्छपाकृति का एक प्रायद्वीप है । स्वतंत्र भारत में यह प्रदेश गुजरात राज्य के अंतर्गत है । कच्छप अर्थात् कछुए की आकृति की समानता के आधार पर तथा पानी से घिरा होने के कारण संभव है कि प्राचीन काल से इस प्रदेश को " कच्छप " कहा जाता रहा हो जिसका विकृत स्वरूप आज " कच्छ " रह गया है । २२° और २४° उत्तर अक्षांश तथा ६८ ° और ७१ ° पूर्व रेखांशवृत्त के बीच में कर्कवृत्त पर अवस्थित यह प्रदेश एक ओर विशाल रन-प्रदेश तथा अरब सागर से घिरा हुआ है, जो कि एक सौ चालीस मील लम्बा और पैंतीस से लेकर सत्तर मील तक चौड़ा है । इसकी उत्तर-पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान स्थित है । इस प्रकार रेत, समुद्र, पहाड़-पत्थर और जंगलों की विविध दृश्यमयी प्राकृतिक शोभा और भौगोलिक विशेषताएँ लिये हुए यह भारत का अपने प्रकार का एक-मात्र सीमावर्ती प्रदेश है । इस प्रदेश की जलवायु सूखी है । यहाँ वर्षा बड़ी अनियमित और परिमाण में कम होती है । शीत और गर्मी के आधिक्य ने यहाँ के निवासियों को कष्ट-सहिष्णु बना दिया है । कच्छ की सब से बड़ी भौगोलिक विशेषता है उसका चिरकालीन पड़ौसी विशाल रन-प्रदेश । भारत की युगों से रक्षा करने वाले प्राकृतिक प्रहरियों में हिमालय के बाद इसका नाम गिनाया जा सकता है । कच्छ का यह रन-प्रदेश उत्तर से पूर्व की ओर विस्तृत होता हुआ चार सौ मील लम्बा और डेढ़ सौ मील चौड़ा है । इस विशाल रन-प्रदेश ने कच्छी लोगों के जीवन तथा संस्कृति को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है । इतिहासकारों ने कच्छ की भौगोलिक विच्छिन्नता को

प्रकाशित करते हुए इस रन-प्रदेश को इसके लिये उत्तरदायी माना है। [१] इसी भौगोलिक विच्छिन्नता ने कच्छ की संस्कृति के आंचलिक स्वरूप को गढ़ा है जिसके कारण वह शेष भारतीय जीवन और संस्कृति से एक प्रकार से भिन्न दिखाई पड़ता है।

कच्छ के निवासियों को " कच्छी " कहा जाता है। इस प्रदेश के प्राचीन निवासियों में मुख्यतः अहीर, काठी और रबारी थे। [२] प्राचीन काल में यह आभीरों का प्रदेश था। यही " आभीर " " आहीर " हैं जो आज भी कच्छ में किसान या कारीगर के रूप में निवास करते हैं। [३] इसके अतिरिक्त ये पशु-पालन और दूध बेचने का व्यवसाय भी करते हैं। [४] कच्छ में सिंध और मारवाड़ से आये हुए लोगों की संख्या अधिक है। सातवीं शताब्दी के अंत में सिंध के मध्यवर्ती प्रदेश " अलोर " पर अरबों का आक्रमण हुआ जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के निवासी अपना मूल स्थान छोड़कर कच्छ में आ बसे। [५] जो लोग सिंध से यहाँ आ बसे हैं वे सारस्वत, कायस्थ, चारण, खारवा, संघार, जत, मियाँना, सुमरा और जाड़ेजा इत्यादि जातियों के हैं। जो भारत के विविध प्रदेशों से आये या बुलाये गये, वे हैं : औदीच्य, नागर-ब्राह्मण, चावड़ा, सोलंकी, वाघेला, खवास, सैयद, पठान,

ooooo

१ " दी ब्लैक हिल्स ऑफ़ कच्छ " एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स, पृ० ५७, प्रकाशन वर्ष १९५८, प्रथम आवृत्ति

२ " बम्बई प्रेसिडेन्सी गज़ेटियर " वॉ० ५, पृ० ३८ ले० जेम्स० एम० कैम्पबेल

३ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० ८१, ले० एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स

४ लेखक द्वारा कच्छ की यात्राओं से प्राप्त अनुभवों के आधार पर

५ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० ६८, ले० एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स

मिस्त्री, प्रजापति इत्यादि । [६] सारस्वत पत्रिकाएँ बनाते हैं तथा नौकरी या व्यापार भी करते हैं । कायस्थ व्यापार के अतिरिक्त राजकाज में भी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर कार्य करते हैं । चारण अपने आश्रयदाताओं का गुणगान करते थे तथा उनकी वंशावली बनाते थे । आजकल कुछ तो राजवंश की नौकरी करते हैं और कुछ पढ़-लिख कर दूसरे कार्य भी करते हैं । खारवा और मियाँना परम्परागतरूप से प्रसिद्ध नाविक हैं । कच्छ के समुद्री व्यापार को उन्होंने बढ़ाया है । संघार और जत लोग किसान हैं तथा इनमें से कुछ सैनिक या पुलिस कर्मचारी भी हैं । सुमरा जाति के लोग राजसेवा करते हैं । औदीच्य ब्राह्मण पुराण बाँचते हैं तथा ज्योतिषी भी हैं । उनमें से कुछ तो कच्छ के राजवंश के कुल पुरोहित हैं । नागर ब्राह्मण कच्छ की सुशिक्षित और परिष्कृत जाति के लोग हैं । इनमें से कुछ तो कच्छ-राज्य में उच्च पदस्थ अधिकारी थे तथा कुछ अध्यापन-कार्य, वक़ालत, डॉक्टरी आदि के प्रतिष्ठित व्यवसाय करते हैं । चावड़ा, सोलंकी और वाघेला अपनी पैतृक जागीरों को सँभालते हैं । खवास राजपूत जाति के हैं तथा राजकार्य में सहायक होते थे अथवा शासक या उसके "भायातों" के यहाँ नौकर होते थे । [७] सैयद और पठान कच्छ के प्रथम जाड़ेजा शासक राव खेंगार के समय में कच्छ में आये थे तथा ये कच्छ-राज्य में सैनिक का कार्य करते रहे । मिस्त्री और प्रजापति कला कारीगरी के जानकार हैं और ये भी कच्छ में बाहर से बुलाये गये हैं । ये बलसोर, भट्टी, चौहान, राठौड़, पढ़ियार, सोलंकी, परमार और टाँक

ooooo

६ "कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० ८ से १४ ले० जयरामदास नय गांधी

७ वही, पृ० ८ से १४

"भायात" : कच्छ के जाड़ेजा शासक के भाइयों और उनके वंशजों को "भायात" कहा जाता है । अपनी अपनी जागीरों के ये स्वतंत्र मालिक होते हैं फिर भी युद्धादि संकट काल में ये कच्छ के शासक की सैनिक-सहायतादि करते हैं ।

ऐसी आठ शाखाओं में विभाजित हैं । [८] समा राजपूत जाति के जाड़ेजा लोग बारहवीं शताब्दी में सिंध प्रदेश से कच्छ में आकर स्थायी रूप से बस गये ।

अतः इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि " कच्छी संज्ञा से अभिहित जन-समुदाय में, यहाँ के मूल निवासियों के साथ भारत के शेष भागों तथा सिंध से आ कर कच्छ में स्थायी रूप से बसने वाली विविध जातियाँ भी हैं, जिनमें से समा राजपूत जाति के जाड़ेजा बारहवीं शताब्दी से लेकर सन् १९४७ ई० तक कच्छ-प्रदेश के शासक रहे । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विवेच्य महाराव लखपतिसिंह कच्छ की इसी शासक परम्परा में आते हैं । आठ सौ वर्षों की इस शासक-परम्परा में महाराव लखपतिसिंह का क्या स्थान है, उसको स्पष्टतया समझने के लिये उक्त शासक-परम्परा के ऐतिहासिक अनुक्रम को दृष्टिगत कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है ।

ऐतिहासिक अनुक्रम :
ooooooooooooo

सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड के अनुसार जाड़ेजा वंश यदु-वंशीय क्षत्रियों की आठ शाखाओं में से एक है । [९] यदुवंश की परम्परा को जनश्रुतियों तथा प्राचीन आख्यानों ने श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के वंशजों से जोड़ा है, जो सिंध से भारत में आये और साम्ब के वंशज होने के कारण " सम्मा " जाति के कहलाये जाने लगे । [१०] कच्छ में जाड़ेजाओं की परम्परा

ooooo

८ " कच्छनो बृहत् इतिहास," पृ० ८ से १४ ले० जयरामदास नय गांधी

९ " ऐनल्स एण्ड ऐन्टिक्विटिज़ ऑफ़ राजस्थान ", पृ० ७३, ले० कर्नल टॉड

१० (अ) " मुँहणोत नैणसी की ख्यात ", पृ० २११ तथा २४४-२४५, संपादक गौरीशंकर हीराशंकर ओझा, अनु० रामनारायण दूगड़, प्र०सं०

(आ) " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० ५७, ले० जेम्स० एम० कैम्पबेल

लाखा जाड़ेजा से मिलती है और उसके आने से पूर्व यहाँ चावड़ाओं का शासन था ।[११] जाड़ेजा वंश का नामाभिधान सिंध से कच्छ में आकर बसनेवाले लाखा से हुआ जिसे इसलिये " जाड़ेजा " कहा गया कि वह सिंध के सम्मा जाति के शासक जाड़ा का दत्तक पुत्र था । सिंधी भाषा में "जाड़ेजा " अर्थात् " जाड़ा का " । लाखा जाड़ा का दत्तक पुत्र होने से " जाड़ेजा " कहलाया और उसके वंशज भी उसी नाम से प्रसिद्ध हुए ।[१२] प्रस्तुत कथन का साक्ष्य अनेक प्राचीन प्रशस्ति-ग्रन्थों एवं वंशावलियों में तथा आधुनिक इतिहासों में मिलता है ।[१३] महाराव लखपतिसिंह के समकालीन एतद्विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण पद्यांश द्रष्टव्य हैं —

" भगवान तिनि के भये वसुधाधिप वसुदेव ।
लेत नाम जिनि को ललित । मिटै मरन की टेव ।। ४१ ।।
तिनि के सुत जप तप बली । सब राजनि सिंगार ।
धाम पुंज श्री कृष्ण धनि । उदित भये अवतार ।।४२ ।।
तिनि के सुभ तनु सांब सुत । औ तिनि के उसनीष ।
भये नृपति तिनि के भले । सतानीक शुभ सीष ।। ४३।।
कहि सपूत तिनि के समा । तिनि के नेता नाउं ।
नोतियार तिनि के नृपति । अबडा उनि के ठाउं ।।६९ ।।
भा मंडल तिनि के भये । जाडा जोध जुवान ।
अग्रज बैरा के कुंवर थापे अपुने स्थान ।।७३ ।।

ooooo

११ " कच्छनुं संस्कृति दर्शन ", पृ० ४९, प्रथम आवृत्ति, ले० रामसिंह जी राठौड़

१२ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० ५८, ले० जेम्स० एम० कैम्पबेल

१३ (अ) " जाड़ेजानो इतिहास ", पृ० ३३ से ३९ ले० कवि भावदान जी भीमजीभाई रत्नूं

(आ) " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १४ ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स

या तैं जाडा अधिप के लाषै लाष स्यानं ।
विधि इहिं जाडेजा बिरन्द । जान्यौ सकल जिहानं ।।७४।। " [१४]

कच्छ के प्रथम जाड़ेजा शासक लाखा ने सन् ११४७ ई० में कच्छ के तत्कालीन चावड़ा वंशीय शासक पूंजाजी को हराकर अपने छोटे भाई लाखियार के नाम से " लाखियार वीयरा " नामक राजधानी प्रस्थापित की । [१५] लाखा ने अट्ठाईस वर्षों तक शासन किया । सन् ११७५ ई० में लाखा जाड़ेजा की मृत्यु हुई । जिस समय कच्छ में जाड़ेजा वंश की सत्ता का प्रारम्भ हो रहा था उसी समय पूर्वीय सत्ताओं के दबाव के परिणामस्वरूप मध्येशिया में तुर्कों के आक्रमण हो रहे थे जिसने भारत की राजकीय स्थिति को भी प्रभावित किया । [१६]

लाखा जाड़ेजा के शासनकाल में ही कच्छ के जाड़ेजावंश में एक अत्यंत क्रूर सामाजिक प्रथा चल पड़ी । इस प्रथा को कच्छ की स्थानीय भाषा में लड़कियों को जन्मते ही " दूध पीती " करना अर्थात् मार डालना कहते हैं । कहा जाता है कि लाखा जाड़ेजा की सातों पुत्रियाँ जब वयस्क हो गईं तब उनके लिये कुलोचित वर ढूँढ़ने के प्रयत्न किये गये । परंतु कुलाभिमानी लाखा को कोई राजकुमार नहीं जँचा । एक दिन जब लाखा अपनी चिंता और विवशता की चर्चा अपने कुल पुरोहित से कर रहे थे तब उन सातों कुँवरियों ने छिपकर उसे सुन लिया । अपने पिता की इस घोर चिंता और

ooooo

१४ " लखपति जससिंधों", पत्रांक १८, हस्तलिखित ग्रंथ, प्राप्तिस्थान : बड़ौदा विश्व विद्यालय का हिंदी हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह, कवि कुँवरकुशल विरचित

१५ " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० ६७, ले० जयरामदास नय गांधी

१६ " दी स्ट्रगल ऑफ़ अम्पायर", पृ० ११७क११८ संपादक आर०सी० मजुंमदार " भवन्स हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ़ दी इंडियन पीपल", वॉ० ५ प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, चौपाटी रोड़, बम्बई ७

विवशता का कारण स्वयं को जानकर इन सातों कुँवरियों ने एक साथ अग्नि-स्नान कर लिया । इस करुण घटना का उल्लेख करते हुए " कच्छनुं संस्कृति-दर्शन " के लेखक लिखते हैं कि इसके पश्चात् इस सामाजिक विवशता के मूल को ही नष्ट करने की यह अमानुषीय प्रथा वहाँ चल पड़ी । [१७]

लाखा जाड़ेजा के पश्चात् रायधन " रत्तो " ने सन् ११७५ ई० से सन् १२१५ ई० तक कच्छ पर शासन किया । अपने समय में रायधन ने अपने पिता द्वारा प्रस्थापित सत्ता को अधिक विस्तृत एवं केन्द्रीभूत किया । इन्होंने कच्छ पर होनेवाले बाहरी आक्रमणों को हटा कर कच्छ-राज्य के विकास की पृष्ठभूमि तैयार की । रक्त वर्ण की पगड़ी पहनने के अपने शौक ने रायधन को " रत्तो " नाम से लोकप्रिय कर दिया । रत्तो रायधन के चार पुत्र थे । चारों ने सत्ता के मोहवश अपने पिता द्वारा प्राप्त राजकीय शक्ति को बाँट कर विकेन्द्रित कर दिया । रायधन के बाद उनके द्वितीय पुत्र ओढ़ा का शासन कच्छ की राजधानी लाखियार वीयरा पर रहा । कच्छ के भावी जाड़ेजा शासक इसी ओढ़ा के वंशज हैं । [१८] ओढ़ा के राज्यकाल में चारों भाइयों में पारिवारिक वैमनस्य ही प्रमुख रहा । सन् १२१५ ई० से १२५५ ई० तक के ओढ़ा के शासन के पश्चात् उसके पुत्र घाओ के समय में ( सन् १२५५ ई० से १२८५ ई० ) कच्छ पर भयंकर अकाल पड़ा जिसको " पनरोतेरो " (संवत् १३१५ वि० का ) अकाल कहा जाता है । इस राज्यव्यापी संकटकाल में भी कच्छ-राज्य कितना निष्क्रिय सा रहा होगा इसकी कल्पना तो इसी तथ्य से की जा सकती है कि समस्त कच्छ के दुष्कालग्रस्त लोगों को अन्न-वस्त्रादि की सहायता दानवीर जगडू शाह ने पहुँचाई थी । एशियाभर के विविध

ooooo

१७ " कच्छनुं संस्कृति दर्शन ", पृ० १८९, ले० रामसिंह जी राठौड़

१८ " दी ब्लैक हिल्स", ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स, पृ० सं० ९९ ।

बंदरगाहों तक भगड़ू शाह का व्यापार फैला हुआ था । कच्छ के दुष्काल-ग्रस्त तथा बेकार लोगों को काम में लगाने के लिए उन्होंने कच्छ के विविध स्थलों में मंदिरों, धर्मशालाओं, बावड़ियों आदि के निर्माण की योजना को कार्यान्वित किया । [१९] इस समय संपूर्ण राज्य की जनता के हृदय पर भगड़ू शाह का एक मात्र शासन दृष्टिगोचर होता है । संपूर्ण प्रजा का निःस्वार्थ-भाव से पालन-पोषण करने के कारण इस प्रदेश की जनता ने संभवतः कृतज्ञ होकर इस महान् दानवीर को " जगत्पिता " कहना आरंभ कर दिया होगा जिसका निर्वाह कच्छ की जनश्रुतियों में अब भी हो रहा है ।

सन् १२८५ ई० से लेकर सन् १४७२ ई० तक की लगभग दो शता-ब्दियाँ कच्छ के शासकों के आपसी भगड़ों, छोटे-बड़े युद्धों, लूट-खसोटादि में ही बीतीं । विशेषकर रत्तो रायधन के पुत्रों के वंशजों में पारिवारिक वैमनस्य ही प्रमुख रहा । [२०] कच्छ के राजकीय इतिहास का यह उल्लेखनीय समय ( सन् १४७२ ई० से १५०६ ई० ) है और इस वंश परंपरागत पारिवारिक वैमनस्य का अंत सन् १५०६ के लगभग हो गया जिसके परिणामस्वरूप जाम हमीर जी के बाद उनके पुत्र राव खेंगार जी का शासन-काल कच्छ-राज्य की प्रगति का प्रथम सोपान सिद्ध हुआ । जाम हमीर जी के समय में घटित प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं ।

जाम हमीर जी को उपर्युक्त वैमनस्य पसंद नहीं था । रत्तो रायधन के चार पुत्रों में से ओढ़ा और गजण का वैमनस्य गजण के वंशज जाम रावल के मन में अब भी कायम था । हमीर जी की इच्छा जानकर जाम रावल ने हमीर जी के बुलाने पर राजवंश की कुलदेवी आसापुरा माता के

ooooo

१९ " कच्छनो बृहत् इतिहास", ले० जयरामदास नय गांधी, पृ० ७१

२० " दी ब्लैक हिल्स", ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स, पृ० सं० ९८

पास अपने परंपरागत वैर को मन से निकाल देने की प्रतिज्ञा ली । हमीर जी ने जाम रावल की प्रतिज्ञा में विश्वास किया और कुछ समय बाद रावल के निमंत्रण पर उसकी राजधानी बाड़ा को गये । जाम हमीर जी ने अपने पुत्रों को साथ ले लिया था । जाम रावल की नीयत झूठी प्रतिज्ञा के बल पर जाम हमीर जी तथा उनके पुत्रों को अपने यहाँ बुलाकर उनकी हत्या करने की थी, जिसे जाम हमीर ताड़ नहीं पाये थे । अपनी योजनानुसार रावल ने हमीर जी की हत्या करवा दी । परंतु हमीर जी के एक सेवक छछ्छर बुट्टा ने बड़े साहस और धैर्य से युवराज कुँवर खेंगार को बचा लिया और उन्हें अहमदाबाद ले जाकर सुरक्षित कर दिया । इधर जाम रावल ने कच्छ पर सम्पूर्ण अधिकार कर लिया । [२१]

अहमदाबाद में खेंगार अपनी किशोरावस्था ही से अच्छी सैनिक-विद्या, युद्ध-कलादि में प्रवीण होने लगे । अपनी चौदह वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुजरात के सुल्तान को शेर के मुँह से बचाया । परिणामस्वरूप वे " राव श्री " की उपाधि से विभूषित किये गये तथा कच्छ की सत्ता पुनः प्राप्त करने में सुल्तान ने खेंगार को संपूर्णतः सहायता पहुँचायी । [२२] सन् १५४१ ई० में राव खेंगार कच्छ के शासक बने जिनके द्वारा कच्छ-राज्य की प्रगति का वस्तुतः सूत्रपात्र हुआ । उनके द्वारा प्रस्थापित राजधानी का नगर भुज, मांडवी बंदर, अंजार, रायपुर आदि नगर तथा अन्य राजकीय व्यवस्थाएँ कच्छ के भावी शासकों के लिए दृढ़ परंपरा और स्थायी विरासत सिद्ध हुईं । [२३] कच्छ-राज्य के इतिहास में, लगभग चार सौ वर्षों के बाद, प्रथम जाड़ेजा शासक लाखा ( सन् ११४७ ई० से ११७५ ई० ) के द्वारा

ooooo

२१ "दी ब्लैक हिल्स", पृ० १०३-१०४

२२ " कच्छनुं संस्कृति दर्शन", पृ० ५०-५१, ले० रामसिंह जी राठौड़

२३ " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १२५, ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स

प्रारम्भ की गई जाड़ेजा सत्ता को प्रथम बार एक सुनिश्चित दृढ़ व्यवस्था राव खेंगार के शासनकाल में प्राप्त हुई । जिस समय कच्छ में जाड़ेजा वंश की सत्ता इस प्रकार सुव्यवस्थित और स्थिर हो रही थी, लगभग उसी समय सन् १५२६ ई० से भारत की राजधानी दिल्ली में लोदीवंश की सत्ता का अंत और मुग़ल सत्ता का उदय हो रहा था । [२४]

राव खेंगार जी की वीरतापूर्ण एवं राजकीय प्रवृत्तियों ने कच्छ की जनता को इस सीमा तक प्रभावित किया कि अद्यापि उनकी कीर्ति कच्छ की जनश्रुतियों में अविच्छिन्न रूप में सुरक्षित है जिसकी चर्चा आगे की जायेगी । राव खेंगार की मृत्यु सन् १५८६ ई० में हुई । उनके पुत्र राव भारमल का राज्यकाल शांतिपूर्ण था । उनके समय की दो प्रमुख घटनाएँ कच्छ के इतिहास में अमर हो गई हैं । सन् १६१७ में बादशाह जहाँगीर ने राव भारमल के विवेकपूर्ण वर्ताव और कच्छ की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए कच्छ-राज्य को इस शर्त पर करमुक्त कर दिया कि वह मक्का-शरीफ़ के मुस्लिम यात्रियों को प्रत्येक सुविधा देगा और साथ ही कच्छ-राज्य स्वतंत्र रूप से अपने सिक्कों को प्रचलित कर सकता है । [२५] इस प्रकार राव भारमल जी के राज्यकाल की ये घटनाएँ कच्छ-राज्य के अर्थतंत्र की व्यवस्था और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सोपान सिद्ध हुई । परंतु साथ ही साथ जहाँगीर द्वारा रखी गई राज-कर-मुक्ति की शर्त का पालन करने पर भी गुजरात के परवर्ती मुग़ल सूबेदार द्वारा कच्छ पर किये गये एकाधिक आक्रमण राव भारमल के राज्यकाल की याद कच्छ के भावी शासकों को दिलाते रहे ।

ooooo

२४ " राइज़ एण्ड फॉल ऑफ़ दी मुग़ल अम्पायर", पृ० ३४, ले० आर० पी० त्रिपाठी

२५ राज्य के निजी सिक्कों का प्रचलन सन् १९४७ तक रहा

(अ) " कच्छनुं संस्कृति दर्शन ", पृ० ५१-५२, ले० रामसिंह जी राठौड़

(आ) " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १२१, ले० एल० एफ़० रशब्रूक विलियम्स

एक दृष्टि से देखा जाय तो राव भारमल के शासनकाल ( सन् १५८६ ई० से १६३२ ई० ) से लेकर प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विवेच्य महाराव लखपतिसिंह के शासनकाल ( सन् १७४१ ई० ) तक का कच्छ का इतिहास इन्हीं मुग़ल आक्रमणों का इतिहास है । राव रायधन प्रथम के राज्यकाल ( सन् १६६६ ई० से १६९८ ई० ) में गुजरात के नवाब ने पठान मुआज़िम बेग़ को कच्छ-राज्य की करवसूली के लिए ससैन्य भेजा । कच्छ पर यह प्रथम मुग़ल आक्रमण था (सं० १७२५ सन् १६६९ ) । राव ने करमुक्ति के समझौते का क़रारनामा तथा उसकी शर्तों के पालन के प्रमाण भी प्रस्तुत किये । कच्छ के प्रसिद्ध ~~सन~~ पवित्र औलिया शाह मुराद पीर ने बीच बचाव किया । परिणामस्वरूप मुआज़िम वापिस लौट गया । [२६] इस प्रकार राव रायधन ने प्रथम मुग़ल-आक्रमण से मुक्ति तो पाई परंतु उन्होंने दूसरे आक्रमण की संभावना से डर कर राज्य-रक्षा की स्थायी व्यवस्था नहीं की । यदि राव रायधन के समय से ही कच्छ-राज्य की सुरक्षा का उचित प्रबंध किया जाता तो कदाचित् प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विवेच्य महाराव लखपतिसिंह के शासन पूर्व के जीवन की राजकीय एवं आर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न ही होतीं । उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि ऐसी भिन्न परिस्थिति के परिणामस्वरूप, युद्धकालीन संकटों के अभाव में उस समय महाराव लखपतिसिंह को संघर्षमय और अव्यवस्थित वातावरण के स्थान पर साहित्य और कला के लिए उपयुक्त ऐसा शांतिमय एवं पोषक वातावरण मिलता जो उनकी सर्जक प्रतिभा को और भी उन्नत करता। राव रायधन की मृत्यु ( सन् १६९८ ई० ) के पश्चात् सत्ताप्राप्ति के वास्तविक अधिकारी कुँवर कायाजी को अधिकार-वंचित करने के कारण वे कच्छ के दुश्मन बनकर सौराष्ट्र के मोरबीनगर में अपनी सत्ता जमाकर बैठ गये । लखपतिसिंह के पिता महाराव देसल जी के राज्यकाल में सन् १७३० में हुए अंतिम मुग़ल

ooooo

२६ " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १२३, ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स

आक्रमण की भयंकरता का कारण ये ही कायाजी थे, जिसका उल्लेख आगे किया जाएगा । राव रायधन के पश्चात् कुँवर प्रागमल अनधिकार रूप में सत्ताधीश बन गये । परंतु उन्होंने अपने यशकर्मों से " महाराव " की उपाधि प्राप्त की जिससे कच्छ के भावी शासक अद्यापि विभूषित किये जाते हैं । [२७] महाराव प्रागमल की मृत्यु सन् १७१५ ई० में हुई । उनके पश्चात् केवल चार वर्षों तक के शासन-काल ही में उनके पुत्र गोड़ की भी मृत्यु हुई । सन् १७१९ ई० में, महाराव लखपतिसिंह के पिता महाराव देसलजी कच्छ के शासक हुए । सन् १७०७ ई० में शहंशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् कच्छ-राज्य का शुभेच्छुक मुग़ल साम्राज्य स्वयं टूट रहा था । [२८] इसलिए महाराव देसल जी दूरंदेशी दृष्टि से कच्छ-राज्य को सुरक्षित करने के प्रयत्न में प्रारंभ से ही लग गये थे । [२९] उनके शासक होने के तीसरे वर्ष ही सन् १७२१ ई० में गुजरात के मुग़ल सूबेदार की ओर से नवाब केसरखान ससैन्य कच्छ पर चढ़ आया । राजकर की वसूली को लेकर बादशाह जहाँगीर के साथ हुए कच्छ के राव भारमल के समझौते के लगभग सौ वर्षों के आसपास यह दूसरा मुग़ल आक्रमण था । भारत की केन्द्रीय सत्ता की निर्बलता, गुजरात के सूबेदारों की स्वतंत्रता आदि से सावधान होकर महाराव देसल जी पूर्व तैयारी से सज्ज थे, इसलिए नवाब केसर खान " भुजिया दुर्ग " की मजबूती को न तोड़ सकने के कारण स्वतः ही लौट पड़ा । जैसा कि हम पहले देख आये हैं राव रायधन जी से विपरीत महाराव देसल जी ने भावी मुग़ल आक्रमण के प्रति सशंक रहकर राज्यरक्षा की तैयारियाँ तेज कर दीं । राज्य की मालगुजारी बढ़ा दी गई । अपूर्ण दुर्गों को पूर्ण किया जाने लगा । सैन्यशक्ति के शिक्षण, संवर्द्धन और सुव्यवस्था के लिए, स्वाभाविक ही, राज्यकोष का विपुल धन खर्च होने लगा । जनहित के अन्य कार्यों को रोक देना ही ऐसे संकटकाल में

---

२७ दी ब्लैक हिल्स, पृ० १२६

२८ वही, पृ० १२८

२९ वही, पृ० १२८

हितावह था । परंतु कालान्तर में प्रजा का धैर्य टूटने लगा । एक ओर इतनी युद्ध सन्नद्धता थी और दूसरी ओर सन् १७२१ ई० के बाद आठ आठ वर्षों के पश्चात् भी कोई दूसरा आक्रमण नहीं हुआ । प्रथम आक्रमण को लोग भूलने लगे थे ~~अने~~ और दूसरे आक्रमण के भय से निश्चिंत बनने लगे थे । फलतः राज्य के सैनिकों एवं अधिकारियों की युद्ध सन्नद्धता में ढीलापन आने लगा । प्रजा में और अधिकारी वर्ग में भावी युद्ध के डर से प्रेरित सभी युद्ध विषयक तैयारियाँ निरर्थक लगने लगीं, और एतद्विषयक व्यय को अपव्यय के रूप में गिना जाने लगा । जनहित के कार्यों के प्रति शासक की उपेक्षा ने प्रजा में असंतोष की भावना जगाई ।

परंतु महाराव देसल जी की युद्धविषयक राजनीति में कोई परिवर्तन न हुआ । उल्टा समय के साथ वे अधिक सशंक बनते गये और राजकीय आय का महदंश वे सैनिक खर्च में लगाने लगे । युवराज कुँवर लखपतिसिंह इस समय १९-२० वर्ष के थे । सन् १७३० ई० में महाराव देसल जी की दूरदर्शिता का प्रमाण मिल गया । गुजरात का नवाब सरबुलंदखान स्वयं पचास हज़ार की सेना ले कर कच्छ पर चढ़ आया । जैसा पहले देख आये हैं कच्छ-राज्य का दुश्मन और मोरबी का ठाकोर कायाँजी सरबुलंदखान का मार्गदर्शक बना था । आक्रमक की शक्ति की तुलना में अपनी सैन्य-शक्ति को देखते ही कच्छ के शासक से लेकर प्रजा समस्त को इस आक्रमण की आत्यंतिक भयंकरता दृष्टिगोचर होने लगी ।

महाराव देसल जी ने अपने भायातों, युवराज कुँवर लखपतिसिंह, दीवान चतुर्भुज मेहता, नगर दुर्ग के अधिकारी शूरजी मावजी आदि प्रमुख व्यक्तियों के साथ संकटापन्न परिस्थिति के विषय में गंभीर मंत्रणाएँ प्रारम्भ कर दीं । दीवान ने युद्धकार्य के लिए पर्याप्त धन जुटा सकने की अपनी असमर्थता प्रकट करके पदत्याग कर दिया । अपर्याप्त धन के उपरांत योग्य कार्यदक्ष दीवान का अभाव भी महाराव के सामने समस्या बन खड़ा हो गया ।

ठीक मौके पर महारानी महाकुँवर ने महाराव के चरणों में अपना समस्त धन और अपने निपुण एवं विश्वासपात्र खजानची सेठ देवकरन की सेवाओं को सादर समर्पित कर दिया । इतना ही नहीं अपने युवराज पुत्र लखपतिसिंह को इस प्रतिज्ञा से युद्धोत्साहित किया कि विजयी लखपतिसिंह का श्री द्वारिकानाथ जी के श्री चरणों में सुवर्ण का तुलादान किया जायेगा ।[३०] इस प्रकार एकाएक अनुकूल वातावरण पाकर महाराव देसल जी ने आक्रमण का प्रत्युत्तर देना प्रारम्भ कर दिया । नये दीवान देवकरन ने बड़ी कुशलता से युद्धप्रिय युवकों, जाड़ेजा वंश के मायातों को राजधानी भुज में आमंत्रित किया ।[३१] अपनी जाति के धनिकों में देश-प्रेम की भावना जगाकर उसने बहुत बड़ी धनराशि एकत्रित कर दी ।

युद्धारंभ में कच्छ ने दो चौकियाँ खो दीं । सरबुलंदखान के भतीजे के नेतृत्व ने तथा कच्छ के दुश्मन मोरबी के ठाकोर कांयाजी के मार्गदर्शन ने कच्छी सैनिकों को ठीक ठीक पीछे हटा दिया । लेकिन इसी समय कच्छ के पक्ष में एक नयी अनुकूल परिस्थिति पैदा हो गई । हिंगलाज माता की यात्रा को जा रहे नागा साधुओं के विशाल दल ने अपने

००००००

३० " गुजरात दर्शन " में भरत राम भानुसुखराम मेहता द्वारा लिखित " कच्छ दर्शन " लेख, पृ० १३३, प्रकाशन : चेतन प्रकाशन, बड़ौदा, आवृत्ति समय १९६०, प्रथम संस्करण

३१ (अ) " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १२५ और १३१, ले० एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स

(आ) " बम्बई गज़ेटियर " वॉ० ५, पृ० ३९ पर की टिप्पणी द्रष्टव्य है : " जाड़ेजा राजपूतों में यह राजकीय प्रथा है कि युद्धादि संकट काल में जाड़ेजा वंशीय मायातों का अफीम से स्वागत किया जाय । स्वागत करने और स्वीकारनेवाले अफीम के किये गये स्वागत को ही अपने दर्जे के योग्य मानते हैं और तभी ये लोग अपने परम्परागत वैर को भुलाकर एक होते हैं ।

यजमान और शुभेच्छुक शासक पर आये हुए इस संकट में सक्रिय सहयोग दिया। अपनी समस्त शक्ति से ये मुग़ल सेना पर पिल पड़े। मुग़ल सैन्य के नायक और सरबुलंद के भतीजे की मृत्यु हो गई। इससे मुग़लों में हताशा और अव्यवस्था फैली देख कर ठीक मौके पर युवराज कुँवर लखपति ने तीन हज़ार घुड़सवारों के साथ नवाब सरबुलंद की छावनी पर धावा बोल दिया और उसके असंख्य जनों को कत्ल कर डाला।[३२] अंततः सर बुलंदखान को लौटना पड़ा और ठाकोर कायाँजी महाराव देसल जी की शरण आ गया।

सन् १७३० ई० के पश्चात् युद्धोत्तर काल में भी महाराव देसल जी ने अपने सुयोग्य दीवान देवकरन को युद्धकालीन अर्थनीति के ही अनुसार चलने को कहा। परिणामस्वरूप, दीवान ने अनेक योजनाओं एवं स्वकीय साधनों से राज्य के साथ ही महाराव के व्यक्तिगत कोष को भी अभिवृद्धि कर दिया। महाराव का धनलोभ निर्बलता की हद तक बढ़ता गया और उनकी मितव्ययता कंजूसी का स्वरूप लेती गई। इसलिए महाराव की इस मनःस्थिति को समझकर चलनेवाला देवकरन ही कच्छ की युद्धोत्तर राजनीति का सर्वेसर्वा बन गया। इधर युवराज कुँवर लखपतिसिंह को ~~व~~ उनके युद्धकालीन प्रशंसनीय कार्य के बावजूद भी कोई राजकीय महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ। एक ओर युवराज कुँवर को अपनी साहित्य-संगीत-कला आदि की विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के पोषण के लिए पर्याप्त धन प्राप्त नहीं हो रहा था और दूसरी ओर राज्य के कोष के अतिरिक्त महाराव का तथा स्वयं दीवान का स्वकीय कोष सीमा से बाहर छलकने लगा था।[३३] अपने आर्थिक-स्वातंत्र्य के लिए लखपतिसिंह के प्रयत्न निष्फल गये। उल्टा महाराव ने युवराज को इन प्रवृत्तियों से विमुख करने के उद्देश्य से दिल्ली के

ooooo

३२ (अ) " कच्छनो बृहद् इतिहास ", पृ० १०१, लै० जयरामदास नय गांधी
(आ) " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३४, लै० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स

३३ वही, पृ० १३२

मुग़ल दरबार में गंभीर राजकीय मंत्रणाओं के लिए एकाधिक बार दिल्ली भेजा । महाराव के इन प्रयत्नों का फल यह हुआ कि कुँवर लखपत दिल्ली के अधुनातन मौजशौक, चमक-दमक, दरबारी शान-शौकत, मुग़लशासकों की विलासिता इत्यादि से परिचित होते गये । परिणामस्वरूप युवराज का स्वभाव उदार एवं खर्चीला होता गया । इस प्रकार महाराव देसल जी और कुँवर लखपत के स्वभाव वैपरीत्य के कारण दोनों में संघर्ष एवं विरोध पैदा होने लगा । युवराज ने समझ लिया कि महाराव की अर्थनीति और उनकी धनलोभी कंजूस मनोवृत्ति का पोषक और संवर्द्धक दीवान देवकरन ही है। उन्होंने दीवान की हत्या करवा दी और अपने पिता को बंदी बनाकर निर्विरोध रूप से कच्छ-राज्य के सभी सत्ता-सूत्र सँभाल लिये । [34] इस प्रकार कच्छ को दो दो मुग़ल आक्रमणों से बचाने वाले महाराव देसल जी की सत्ता का करुणांत हुआ, परंतु युवराज लखपतिसिंह सत्ताधिकारी बनने पर भी अपने पिता महाराव देसल जी की जीवितावस्था में उन्हीं के नाम से राजकार्य करते रहे । [35] सन् १७५२ ई० में ही उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् विधिवत " महाराव " का पद ग्रहण किया जिस पर यथास्थान विचार किया जायेगा ।

इस प्रकार अबतक दिये गये कच्छ की शासक-परंपरा के ऐतिहासिक अनुक्रम के आधार पर उसके अंतर्गत महाराव लखपतिसिंह का स्वेच्छाचारी एवं प्रतिशोधपूर्ण व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है ।

महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल की प्रवृत्तियों की चर्चा प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषय-वस्तु के अंतर्गत अपना विशिष्ट स्थान रखती है अतएव, उसको महाराव की राजकीय जीवनी के रूप में अन्यत्र प्रस्तुत किया गया है ।

००००००

३४ वही लेखक, पृ० १३४-१३६

३५ " बम्बई गज़ेटियर" वॉ० ५, पृ० १४१ ले० जेम्स एम० कैम्पबेल

तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :

यह दृष्टिगत किया जा चुका है कि कच्छ-प्रदेश की भौगोलिक अवस्था तथा यहाँ की विविध जातियों के दीर्घकालीन निवास ने एक ऐसी आंचलिक संस्कृति को स्थायी रूप दे दिया है जो शेष भारत से तात्विक रूप में भिन्न न होते हुए भी अपना विशिष्ट प्रादेशिक रंग रखती है । विदेशी इतिहासज्ञ रशब्रूक विलियम्स ने ठीक ही लिखा है कि कच्छ में क़दम रखना किसी दूसरी दुनिया में आ पड़ने के समान है ।[३६] यहाँ की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परम्पराएँ अपना निजी स्वरूप रखती हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विवेच्यकाल में ये परम्पराएँ जिस रूप में थीं, यहाँ क्रमशः उनका निरूपण किया जा रहा है ।

सामाजिक परिस्थिति :

" कच्छी " संज्ञा से परिचित यहाँ की विविध जातियों का सामान्य परिचय दिया जा चुका है । इस युग के समाज में प्रायः ये ही जातियाँ थीं । इनके अतिरिक्त इस समय कुछ अन्य विदेशी जातियाँ भी यहाँ आ बसी थीं, जिनका निर्देश महाराव लखपतिसिंह के आश्रित कवि कुँवर कुशल ने इस प्रकार किया है —

" भणशालि भाटीऽये भत्तिवंत । व्रेग हु वग्ग ब्योहारवंत ।
पनरसनी लोक करंबी - निजोरि । कुंअरेस बसत कसबी करोरि ।२३६।।
पातरिनि हुडकिनी पूर माल कंचनी रामजनीयें क्वाल ।
पगतनि भवाइयै भरे भांड । नकली नकलनि के मस्त सांड ।२३७।।
सींघी रू पारसी फारसीनि । किलमाक फिरंगी फारसीनि ।
आरबी विलंदे अंगरेजु । रोमी मलबारी अति रहेजु । २३८ ।।"[३७]

३६ " दी ब्लैक हिल्स", पृ० ११, लें० एल०एफ० रशब्रूक विलियम्स
३७ द्रष्टव्य : कवि कुँवर कुशल विरचित " कवि रहस्य " प्रति पृ०३६, छं० सं० २३६ से २३८ ; अप्रकाशित ; हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह, हिंदी

(अगले पृष्ठ पर चालू)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन भुज में स्थानीय जातियों के अतिरिक्त अंग्रेज़, वलंदे, फिरंगी, अरब, पारसी, सिंधी, रोमी, मलबारी आदि देशविदेश के लोग भी रहते थे। इस प्रकार इस समय का समाज अनेकविध देशी-विदेशी जातियों का बना हुआ था जो कदाचित् भावी समाज का अपरिपक्व और आरम्भिक रूप था। इस सामाजिक वैविध्य का कारण था इस प्रदेशविशेष की व्यापारिक एवं व्यावसायिक परंपरा, जिस पर विशेष चर्चा आगे की जाएगी।

यहाँ के जन-समाज का प्रमुख चारित्रिक लक्षण था अपने शासकों के प्रति असीम श्रद्धाभावना का होना। महाराव देसल जी के प्रति तत्कालीन जनसमाज की श्रद्धा का प्रमाण यह है कि देसल जी और परमेश्वर को समान दृष्टि से देखा जाता था और उनको जनसमाज ने बड़ी श्रद्धा से " देसरा परमेसरा " माना था।[३८] इस उच्च प्रकार की श्रद्धा भावना का कारण कच्छ के महाराव की न्यायप्रियता एवं प्रजावात्सल्य का गुण था। प्रसिद्ध है कि महाराव देसल ने एक ग़रीब चमार की फ़रियाद सुनने के लिए अपना भोजन अधूरा छोड़ा था।[३९] महाराव लखपतिसिंह ने भी धमड़का के किले को इसी कारण भूमिसात् कर दिया कि वहाँ के ठाकोर ने किसी गरीब किसान की सम्पत्ति को हड़प लिया था।[४०] इसी प्रकार मुंद्रा नगर में स्थित अपने ही युवराज कुँवर गोड को वश में करने के लिए उन्होंने सेना भेजी थी क्योंकि कुँवर ने मुंद्रा के व्यापारियों के पास अनधिकार रूप में बड़े धन की माँग की थी, जिस पर आगे के प्रकरणों में विचार किया जायेगा।

यहाँ हिन्दू और मुसलमानों में ईर्ष्या-द्वेष और संघर्ष की

००००००

पिछले पृष्ठ से चालू —

विभाग, बड़ौदा विश्व विद्यालय, बड़ौदा में उपलब्ध। इसकी प्रतिलिपि लेखक के पास उपलब्ध है।

३८ " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १२६, ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स

३९ वही, पृ० १०७

४० " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० १४२, ले० ज़ेम्स एम० कैम्पबेल

भावना नहीं थी । इतिहासकारों ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि सन् १८१३ ई० में यहाँ प्रथम बार हिन्दू-मुस्लिम दो विरोधी दल बने ।[४१]

अपने शासकों के प्रति अत्यधिक श्रद्धालु होने के कारण उस समय के समाज में राजकीय इतिहास में तथा राज परिवार में घटित अच्छे प्रसंगों ने सामाजिक पर्वोत्सवों का रूप ले लिया था । नाग पंचमी श्रावण शुक्ल पंचमी के दिन प्रतिवर्ष भुज में एक भव्य सवारी निकलती थी । जिसके दर्शन के लिए हिन्दू, मुस्लिम तथा अन्य देशी-विदेशी जातियों के छोटे-बड़े लोग नगर के रास्तों पर जमा होते थे । दरबार गढ़ के महल से निकल कर भुजिया मंदिर तक जानेवाली इस सवारी के आगे उस ढोली के वंशज ढोल पीटते हुए चलते थे, जिसने भुज नगर के प्रस्थापक राव खेंगार प्रथम के पिता हमीर जी का रक्षण करते हुए अपनी जान दे दी थी । इस सवारी के मध्य में राव खेंगार की वीरता की प्रतीक " साँग " को तथा मुग़ल बादशाह द्वारा महाराव लखपत को सम्मान के प्रतीक रूप मिली " माहि-मरातिब " को भी दर्शनार्थ रखा जाता था ।[४२] राव खेंगार प्रथम और महाराव लखपतिसिंह के समय के समाज की भावनाशीलता को अद्यापि इन प्रसंगों में प्रदर्शित किया जाता है । महाराव लखपतिसिंह के समय में उक्त जन समाज के अतिरिक्त मांडवी और अंजार बंदर तथा राजधानी के नगर भुज में उच्च समाज का भी एक स्तर था, जो धनिकों, व्यापारियों का बना हुआ था । इस उच्च वर्गीय समाज में प्रायः सभी लोग गुलाम रखते थे । प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड जब सन् १८२३ ई० में मांडवी बंदर को देखने गये थे तब वहाँ के व्यापारियों ने उनको बताया था कि उनके खरीदे हुए गुलाम अब वश में नहीं रहते, भाग जाते हैं । पहले जब महारावों का शासन था तब तो इन्हें सुधारा जाता था लेकिन अब तो आपका (जेम्स

oooooo

४१ " दी ब्लैक [illegible] हिल्स", पृ० १८९, ले० एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स

४२ वही, पृ० १०७

टॉड को सम्बोधित करते हुए अर्थात् अंग्रेज़ों का ) राज्य है । [४३] इन गुलामों में प्रायः अफ्रिका से यहाँ लाये गये सीदी लोग थे जो कच्छ के ही निवासी बन गये थे । वे कच्छी बोलते थे और स्वभाव के हँसोड़ और मौजी होते थे । [४४] महाराव लखपतिसिंह के दरबार में सात सौ सीदी गुलाम थे । [४५] शासक वर्ग के रहन-सहन, सभ्यता के अनुकरण के रूप में यहाँ का उच्चवर्गीय समाज भी इन सीदी गुलामों को खरीदने में गौरव का अनुभव करता था । यही अनुकरणवृत्ति इस समाज की स्त्रियों को पर्दे में रखने की प्रथा में भी थी । [४६]

इस उच्चवर्गीय समाज के ऊपर स्वयं महारावों का जाड़ेजा वंशी शासक-समाज था, जो केन्द्रवर्ती शासक के परिवार और उसके अन्य वंशज अर्थात् " भायातों " के रूप में राजधानी भुज और अनेक छोटी-छोटी जागीरों में फैला हुआ था । महाराव लखपति के समय में हालानी, गोडानी, साहेबानी और वाघेल ये प्रमुख भायात थे । [४७] इस वर्ग में भी पूर्व निर्दिष्ट " दूध पीती करने " की क्रूर प्रथा चल पड़ी थी । सम्भव है कि

ooooo

४३ "बॉम्बे हिल्स," पृ० २२६

४४ " कच्छनुं संस्कृति दर्शन ", पृ० ५४, ले० रामसिंह जी राठौड़

४५ द्रष्टव्य : कवि कुँवर कुशल विरचित " कवि रहस्य", प्रति पृष्ठ १८

(अ) " सीदी सोहै सात सैं । और षवास अनंत ।
सिंघरूप लखसिंघ के । लाषनि फौज लसंत ।।११।। "

(आ) कवि कनक कुशल विरचित " लखपति मंजरी नाममाला " छंद ६४वाँ

" फिरत चेरे फुटरे । है हजूरि दु हजार ।
साचे सीदी सात सैं । तेग वेग तैयार ।।६४।। "

दोनों अप्रकाशित, हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह, हिंदी विभाग, बड़ौदा विश्वविद्यालय, बड़ौदा में उपलब्ध । प्रतिलिपि लेखक के पास सुरक्षित है

४६ " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० ३९, ले० जेम्स एम० कैम्पबेल

४७ " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० ९८, ले० जयरामदास नय गांधी

महाराव लखपतिसिंह तक के समाज में एक अभ्यस्त रूढ़िपालन के रूप में यह प्रथा चली आ रही होगी। परंतु उनकी एक लड़की धनकुँवर बाई का विवाह बड़ौदा के गायकवाड़ दामाजीराव ( सन् १७३२ ई० से सन् १७६८ ई० ) से सम्पन्न होने का प्रमाण प्राप्त होता है। [४८] इससे यह प्रमाणित होता है कि स्वयं महाराव ने परम्परा से चली आ रही इस क्रूर सामाजिक प्रथा के विरोध में कोई कानून नहीं ~~बनाया और~~ व्यक्तिगत रूप में वे संभवत: इस कुप्रथा के समर्थक नहीं थे।

जाड़ेजा राजपूतों का विवाह प्रायः चूड़ासमा, वाघेला, सोढा, झाला और गोहिल परिवार की स्त्रियों से होता था। [४९] एक ऐसी प्रचलित मान्यता है कि जाड़ेजा पुरुष दुरामिमानी, जड़, आलसी और व्यभिचारी होते थे और उनकी तुलना में स्त्रियाँ विलक्षण, बुद्धिमान और समझदार होती थीं, इसी कारण उन स्त्रियों को " मूर्ख पुत्रों की विवेकी माताएँ" कहा गया है। [५०]

बौद्धिक जागृति, शिक्षण तथा ज्ञान-विज्ञान की प्रगति की दृष्टि से इस समय के समाज में स्वाभाविक ही विविध स्तर दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन परम्परा से चली आ रही वर्ण व्यवस्था अपने किसी न किसी रूप में वर्तमान थी। लखपतिसिंह के आश्रित कवियों ने अपने ढंग से इसका तथ्योद्घाटन किया है। [५१] इससे यह फलित होता है कि उस समय के

ooooo

४८ हिस्टॉरिकल सिलेक्शन्स फ्रॉम बड़ौदा स्टेट रिकार्ड्ज़, वॉ० III, १७५०-१७५८ पृष्ठ २५०,२५१,३१४,३३१ और ३३२ में धनकुँवर बाई के पत्र

४९ " बम्बई गज़ेटियर," वॉ० ५, पृ० ६४, लें० ज़ेम्स एम० कैम्पबेल

५० वही, पृ० ६३

५१ (अ) " कोलाहल कृत कुंज पुंज पत्रनि परत छनि।
मुनिजन गनमन मुदित। सरस सरसी जल स्वच्छनि ।।

—— आगे चालू ——

समाज में कुछ पढ़े-लिखे लोग थे किन्तु जन सामान्य में ऐसे अनपढ़ लोगों की संख्या ही अधिक थी जो हस्ताक्षर न कर सकने के कारण उसके बदले अपने धंधे के सूचक संकेत-चिह्न को चित्रित करके "लहिये" (लेखक) के द्वारा साक्ष्य के रूप में अपना संक्षिप्त नाम, परिचय लिखवा देते थे। इस समय कदाचित् अंगूठा छाप देने की प्रथा नहीं थी। इस तथ्य से प्रकट है कि तत्कालीन समाज प्रामाणिक होने के साथ साथ नैतिक दायित्व-निर्वाह के प्रति सजग था। संवत् १७९० के एक लेख में (दस्तावेज में ) किसी वृक्ष पर अपना अधिकार सिद्ध करने के लिए किसी मोमाहिआ चावड़ा ने उस वृक्ष का चित्र देकर यह लिखवाया कि " यह वृक्ष चावड़ा मोमाहिआ का है। " इसी प्रकार "हालर " की निशानीवाला संवत् १७९७ का अन्य दस्तावेज भी मिलता है।[५२]

आर्थिक परिस्थिति :
o-o-o-o-o-o-o-o-o

सामान्यतया कच्छ समृद्ध प्रदेश नहीं है। आरम्भ में ही हम देख चुके हैं कि यहाँ वर्षा बड़ी अनियमित और परिमाण में कम होती है। इसलिए

oooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू —

कठित मिथनि कुंब। दबकि तकि दुरे दरीदर।
जपतप अर्चन जग्य। बदत बेदध्वनि द्विजबर।।
उघरे किंबार जा मैं उदय। लुके लंपटिय चोर नर।
अंबरमणि दिनमणि देव अति। कुंअर हीय परकास कर।।६।। "

(कुँवरकुशल विरचित " लखपति मंजरी नाममाला " हस्तलिखित ग्रंथ )

(आ) " देऊळ घणा प्रभूरौ दरिसंण। वाचैं च्यारि वेद ब्राह्मण।
कथा पुरांण कीरतंन कीजै। दांन गांन झाझा दीव रीजैं।।५५।।"

(हमीरदान रत्नूं विरचित " लखपति गुण पिंगल" के हस्तलिखित ग्रंथ के " लखपति पिंगल रै आदि जदवंस वरणण " छंद ५५ ।)

५२ " कच्छनुं गुजराती साहित्य," पृ० १५, १६ तथा १७ के मध्य में दी गई प्रतिलिपि द्रष्टव्य है, ले० रामसिंह जी राठौड़

कच्छ में रह कर जीवन यापन करने वाले कुछ लोग कृषि, हस्तकला एवं कारीगरी तथा छोटे-मोटे कुटीर उद्योगों से अर्थोपार्जन करते हैं तथा बहुसंख्यक लोग सेठ-सौदागरों, ठाकोर-भायात एवं शासक के यहाँ नौकर होते हैं । कच्छ से बाहर जाकर समुद्रमार्ग से व्यापार करनेवालों की प्राचीन परंपरा का उल्लेख कच्छ के इतिहास में मिलता है । समुद्र यहाँ के लोगों के लिए बाह्य संपर्क का राजमार्ग है । यहाँ के नाविकों की लंबी साहसपूर्ण, परंतु सुनियोजित, सफल समुद्र-यात्राओं ने विदेशियों का ध्यान खींचा है । [५३] इसका अत्यंत ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विवेच्य महाराव लखपतिसिंह के जीवनकाल में ही मिलता है । उन्होंने अपने प्रिय इंजीनियर रामसिंह मालम को एकाधिक बार योरप की यात्रा पर अपने नौसिखियों के साथ काँच और लोहे के उद्योगों का ज्ञान दिलाने के लिए भेजा था । [५४] उन्हीं के पुत्र महाराव गोड़ ने एक ऐसा जलपोत तैयार करवाया था जो इंगलैण्ड की यात्रा करके सफलतापूर्वक लौटा था । [५५] इस प्रकार तत्कालीन कच्छ की राजकीय आय में सामुद्रिक व्यापार का बहुत बड़ा हिस्सा था । अंजार बंदर एवं चौबीसी, मुंद्रा, कांठी और कोरा विभाग, मियांनी के गाँव तथा रापर और वागड़ ये राज्य की कुल आय के स्रोत थे । [५६] सन् १६१७ ई० से कच्छ में उसके अपने चलन के स्वतंत्र सिक्के चलते आ रहे थे जो इस काल में भी कोरी, ढिंगलो और दोकड़ो नामों [illegible] से प्रचलित थे । [५७] इसके

०००००

५३ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० ३९, ले० जेम्स० एम० कैम्पबेल

५४ " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १४०

५५ " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० ३९, ले० जेम्स एम० कैम्पबेल

५६ वही, पृ० १३८

५७ " दी ब्लैक हिल्स", पृ० ११ पर दी गई कोरी, ढिंगलो और दोकड़ो क्रमशः शेष भारत में प्रचलित रुपया, आना और पाई की कीमत की बराबरी के सिक्के थे, इस बात का विरोध करते हुए " कच्छनुं

— अगले पृष्ठ पर

अतिरिक्त कच्छ राज्य के अपने स्वतंत्र चुंगी नियम भी थे । भारत से कच्छ में आने वाले माल पर जिस प्रकार चुंगी लगाई जाती थी उसी प्रकार यहाँ से बाहर जाने वाले माल पर चुंगी दी जाती थी । कच्छ-राज्य की यह स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था हमारे विवेच्यकाल में भी बनी रही थी । महाराव लखपतिसिंह के पिता को सन् १७१९ ई० में राज्याधिकार मिला तब राजकीय आय अत्यल्प थी । महाराव देसल जी इस आय के अनुसार अत्यंत सादगी-पूर्ण और मितव्ययी जीवन बिताते थे । राज्य रक्षा के कार्य के लिए अलग खर्च न करके अपने भायातों के प्रेम और शौर्य के बल पर महाराव निर्भर रहते थे ।[५८] सन् १६१७ ई० में महाराव भारमल ने कच्छ-राज्य की आर्थिक निर्बलता का हवाला देकर बादशाह जहाँगीर के द्वारा उसे राज-कर-मुक्त करवाया था, वही आर्थिक निर्बलता एवं करमुक्ति की दशा सौ वर्षों के उपरान्त अब भी थी । इस प्रकार की वर्तमान आर्थिक स्थिति में अनेक उतार-चढ़ाव महाराव लखपतिसिंह के युवराज-काल में आये । सन् १७२३ ई० से सन् १७३० ई० तक के युद्धकाल में देसल जी ने अत्यंत सजग होकर राज्य की सुरक्षा के लिये अर्थतंत्र को व्यवस्थित एवं विकसित करने के प्रयत्न किये । फिर भी सन् १७३० ई० के भयंकर युद्ध में उनको जिस आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा इसको हम पहले देख आये हैं । इसके पश्चात् के युद्धोत्तर काल में भी भावी युद्ध की आशंका तथा अपने धनलोभी स्वभाव के वशीभूत होकर महाराव देसल जी ने अपने नये दीवान देवकरन को राजकीय आय बढ़ाने के लिए तत्पर रखा । चतुर दीवान ने

ooooo

पिछले पृष्ठ से चालू —

संस्कृति-दर्शन " के लेखक और कच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् श्री० रामसिंह जी राठौड़ ने लेखक को यह सूचना दी कि कोरी और रुपया आदि में अनुरूपता थी समान मूल्य के ये सिक्के नहीं थे । लेखक इस सूचना के लिए श्री राठौड़ जी का आभारी है ।

५८ " कच्छनो बृहद् इतिहास", पृ० ९८, ले० जयरामदास नय गांधी

इस के लिए उद्योग-व्यापार को प्रोत्साहन दिया, भूमिकर की उचित व्यवस्था की तथा किसानों को आर्थिक सहायता देकर उत्पादन को प्रोत्साहन दिया । परंतु चतुर दीवान ने महाराव की अर्थलोभी वृत्ति को निर्बलता की हद तक उभार दिया और उनके व्यक्तिगत कोष को भी अभिवृद्ध किया । देवकरण के सफल प्रयत्नों से राज्य की वार्षिक आय अठारह लाख कोरी तक बढ़ गई । [५९] इन तथ्यों के आधार पर यह अवश्य दृष्टिगत होता है कि महाराव देसल जी के राज्यकाल की आर्थिक स्थिति पहले से कुछ अच्छी हो गई थी । लेकिन उनकी लोभपूर्ण अर्थनीति तथा कंजूस मनोवृत्ति ने एक ओर प्रजाहित के अन्य कार्यों को रोक दिया था और दूसरी ओर युवराज कुँवर की आर्थिक स्वतंत्रता में भी बाधा पहुँचाई । युवराज ने अत्यंत असंतुष्ट होकर इससे मुक्त होने के लिए जो प्रयत्न किये उनका सविस्तर विवेचन यथास्थान किया जाएगा । जब युवराज कुँवर लखपति ने अपने हस्तक राज्यसत्ता ले ली तब उनके पिता द्वारा संचित धनराशि का उनका व्यक्तिगत कोष एक करोड़ रुपयों का था । [६०] इस संचित धनराशि के कारण उनको अपने राज्य-काल के आरम्भ से ही आर्थिक स्वातंत्र्य मिल गया । दूसरे, उनके पिता के राज्य-काल के आरंभ के कुछ वर्षों के बाद से जिस युद्धकालीन परिस्थिति ने सात-आठ वर्षों तक बराबर आर्थिक संकट उपस्थित किया था, उसका इस समय नितान्त अभाव था । इतना ही नहीं महाराव लखपतिसिंह ने अपने होनहार इन्जीनियर रामसिंह मालम के कुशल संचालन में कच्छ जैसे अनुपजाऊ प्रदेश में अत्यंत आवश्यक ऐसे अनेक कारखानों, कर्मशालाओं एवं हस्तोद्योग सिखाने के स्कूल खुलवाये जहाँ तोपें ढालने, बंदूकें बनाने, लोहा और काँच तैयार करने तथा घड़ी बनाने के विविध उद्योग सम्पन्न होने लगे तथा

oooooooo

५९ " बम्बई गजेटियर", वॉ० ५, पृ० १४०, ले० जेम्स० एम० कैम्पबेल

६० वही, पृ० १४९

जहाँ नक्काशी और मीनाकारी की महीन कारीगरी तथा ईनेमल धातु और सोना-चाँदी के गहने ढालने का कार्य भी सिखाया जाने लगा जो बाद में आधुनिक काल के आरम्भ तक "कच्छ वर्क" के नाम से पूरे भारत में प्रसिद्ध रहा ।[६१] रामसिंह द्वारा निर्मित तोपें "रामसंगी तोप" के नाम से प्रसिद्ध हुई थीं ।[६२]

महाराव लखपतिसिंह ने विविध स्थापत्यों के कार्य भी रामसिंह मालम द्वारा करवाये, जिनमें सुप्रसिद्ध आईना-महल अत्यन्त कलापूर्ण और भव्य था ।[६३] ऐसी खर्चीली एवं दीर्घकालीन निर्माण-योजनाओं के अन्तर्गत कच्छ में लोगों को रोजी-रोटी और आमदनी का सुअवसर प्राप्त होता रहता था । यह उल्लेखनीय है कि लखपतिसिंह से पहले ऐसी सुचिंतित योजनाओं का प्रायः अभाव था । इसके अतिरिक्त लखपतिसिंह अपने राज्य के समस्त व्यापारीवर्ग को प्रोत्साहन देते थे तथा उनके मान सम्मान की रक्षा करते थे ।[६४] भुज नगर के बाजार में पुलिस चौकी की दीवार पर ताम्रपत्र खुदवा कर उन्होंने - - - - - - - -

oooooooo

६१ (अ) "दी ब्लैक हिल्स", पृ० १३९-४०, लै० एल०एफ० रशब्रूक विलियम्स
(आ) "कच्छनुं संस्कृति दर्शन", पृ० ५३ और २०४, लै० रामसिंह जी राठौड़

६२ "बजत बहुत तूर तोपैं हजारैं बडी रामचंगी अपारैं परे संग हैं ।
मदभर अज लाष, बाजी लसैं लाष पाचैं, राउ को नंदयौं जंग हैं ।
कुंअर कुसल देषि लाषा महाराज की ये सवारी सदाई यहैं रंग हैं ।"
कवि कुँअर कुशल विरचित "कवि रहस्य" छं० सं० ११६७, पत्रांक १६२, हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, बड़ौदा । लेखक के पास प्रतिलिपि सुरक्षित है ।

६३ "गुजरात सर्व संग्रह", पृ० ४९७ लै० नर्मदाशंकर लालशंकर कवि, सन् १८८७ ई०

६४ "दी ब्लैक हिल्स", पृ० १४६

व्यापारियों को मुक्त - - - - व्यापार करने की घोषणा की थी । [६५]
महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल के प्रथम दशक का समय आर्थिक परिस्थिति के लिए अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्त्व का समय है । प्रजा को प्रोत्साहित करके उसके अर्थोपार्जन के अनेक साधन जुटा कर महाराव ने अपने

ooooo

६५ भुज नगर के बाजार की पुलिस चौकी की दीवार पर जड़वाये हुए ताम्रपत्र की प्रतिलिपि दी जा रही है :

" - - - - - - - - - - विस्तर - - - - - - - - - - - - - -

" विस्तर श्री सविश्वर पद प्रसाद प्राप्तोदय महाराउ मिरजा राजा श्री लषपतिकस्य मुद्रिका महाराउ मिरजा राजा माहाराजा श्री लषपत जी वचनांत श्री भुजनगर ती अंजारती मुंनराती मांडवी ती लषपत बंदर ती वसंत बंदर तथा जषठ बंदर ता बीजां परगणां समस्त ना वैपारी ता साहुकार सोदागर ता रैअत लोकाई समस्त जोगा जत प्रथम तमने दगधण घणी हती ते राउ श्री जी ऐ अमने दैसभलावो तारे अम तम उपर मेहेर-बांन थई जे वातमां तमारी कचवांण हती ते वात सरवे टाली ने त्रांबा ने पत्रे मांडी दीधु छे० हवे तमे वेपार वणज ता पोहरो पाल मोकले मने करजो कोए वातनो मुलाएजो करसो मां ० हवे वगर गुने तमारू नांम कोऐ लेसे नही ते लेणा लेषा नी बाबत हसे ते लेषे चोषे संमफ से ते मांहे पण कोए हरकत हेलो करसे नहीं अने जो कोए माथे गूनो फुन आवु तो पण तेनु दरबार ना अमीन बे माणस ता अमीन बे वेपारी अे चार मांणस त्रेवडी दरबार ने केसे तेम दरबार करसे अने दरबार ने मोटुं काम पडे तारे छोई जांणी वेपारी पासे ओछीनुं उधाई मागे तो ते पण चार अमीन माणस टेवी केहे ते लेवुं पछे तेने दांण दवांण ना ठाममांथी पेलु वाली देवुं आज पछी रैअत ने चब चोवो करी डंड करो ईने नांमे दोकडो १ कोए पासे लेवो नही ते माटे सेधी वातें षातर जमे राषी रोजगार बुषते दले करजो आ लषा प्रमाणे अमारा वंशजो होसे ते पाले तेनो अमारो कोल छे आसाढ शुदि १ गरो संवत् १८०८ वर्षे पंवानंगीरी श्री मुष ।। श्री ।। श्री ।। श्री ।। "

राज्य की आर्थिक प्रगति के प्रयत्न किये । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण मार्ग भी अपनाये गये जिनसे महाराव के बुद्धि चातुर्य, कार्य कौशल और राज्य-व्यवस्था शक्ति का परिचय भी मिलता है ।

उन्होंने कच्छ राज्य के इतिहास में प्रथम बार दंड प्रथा को प्रारंभ किया, जिससे राज्य की आमदनी का एक नया रास्ता खुला । भविष्य में इस दंड प्रथा को राज्य का मान्य नियम बना लिया गया । [६६] दूसरा अपने राज दीवान के पद पर वे उसी को चुनते थे जो स्वयं अति धनवान हो तथा राज्य के धनिक वर्ग में जिसका प्रभाव हो । राज्य की अर्थव्यवस्था में निष्फल होते ही उस दीवान की सम्पत्ति राज्याधिकार में ले ली जाती थी । [६७] इससे भी राज्य की आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि हुई ।

इस बुद्धिमान और व्यवहार कुशल शासक ने एक अन्य युक्ति का भी सफल प्रयोग किया था जिसके विषय में लेखक ने कच्छ के वयोवृद्ध लोगों के मुँह से सुना है । " लाखाशाई ढाळियो " से प्रसिद्ध ऐसा खाट अत्यंत कलात्मक ढंग से बनाया, तराशा और रंगा जाता था जिसको महाराव के एक रात सो ~~चुकने~~ चुकने के बाद राजधानी के धनिकों के द्वारा ऊंची कीमत देकर नीलाम से खरीदा जाता था और इस प्रकार रोज नये-नये खाट बनते

ooooo

६६ " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० १४९, ले० जेम्स० एम० कैम्पबेल

६७ (अ) वही, पृ० १४१

(आ) " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० १०३, ले० जयरामदास नय गांधी

थे और पुरानों का नीलाम होता था । राजमहल के एक कोने में अनेक बढ़ई, शिल्पी, रंगनेवाले स्थायीरूप से इस कार्य में संलग्न थे । [६८]

उनके राज्यकाल के अंतिम वर्षों में राज कर निर्धारण की मात्रा कम थी, व्यापार-उद्योगों का विकास हुआ था जिस के कारण राज्य की आय में पर्याप्त अभिवृद्धि हुई । [६९] इस समय अकेले लखपतनगर की चावल की खेती से ही वार्षिक ८ लाख कोरी की राजकीय आय होती थी । [७०] इतनी विशाल आर्थिक समृद्धि को सुनियोजित करके लखपतिसिंह राजकीय आय को विविध सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों में मुक्तहस्त से व्यय करते थे जिस पर उनके व्यक्तित्व से संबंधित विवेचन में आगे विचार किया जायेगा ।

उपर्युक्त आर्थिक परिस्थितियों से सम्बन्धित पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से स्पष्ट है कि महाराव लखपतिसिंह ने अपने समय में कच्छ राज्य की समृद्धि के लिये सानुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया । इसके परिणामस्वरूप कच्छ प्रदेश की जनता सामाजिक, सांस्कृतिक सभी दिशाओं में प्रगति कर सकी । साथ ही यह असंदिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि साहित्य और कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति को भी उपर्युक्त समृद्धि तथा लखपतिसिंह के उदार स्वभाव दोनों का बड़ा आधार मिला होगा जो कि परवर्ती विवेचन का विषय है ।

ooooooo

६८ मांडवी (कच्छ) के प्रसिद्ध नागरिक एवं डॉ० मनु पांधी ने लेखक को इसकी जानकारी दी थी । भुज के आईना-महल में महाराव लखपत के शयन-कक्ष को तथा उसमें इस "लाखाशाई-ढालियो " को सुरक्षित एवं सुसज्जित रखा हुआ लेखक ने देखा है ।

६९ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १४१

७० " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० १४२

धार्मिक परिस्थिति :
o-o-o-o-o-o-o-o

कच्छ में वैष्णव शैव और शाक्त धर्म प्रचलित रहे हैं । यहाँ किस धर्म का कब से प्रचार हुआ इसका कोई निश्चित ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता परंतु पूरे गुजरात प्रदेश की धार्मिक परिस्थितियों से सम्बन्धित प्राप्त विवेचनों से उसे समझा जा सकता है । दूसरी ओर कुछ ऐसे भी तथ्य मिलते हैं जो गुजरात और कच्छ में इन धार्मिक सम्प्रदायों भी कालगत अवस्थिति को कुछ आगे पीछे भी द्योतित करते हैं । गुजरात में वैष्णव धर्म का व्यापक प्रचार ई० सन् १५ वीं शताब्दी में मिलता है । [७१] शिव-शक्ति के पूजन की व्यापकता पश्चिम भारत में ई० सन् की प्रथम और द्वितीय शताब्दी में होने की मान्यता है । [७२] कच्छ में भी वैष्णव धर्म का प्रचार गुजरात में उसके व्यापक प्रचार के समय में हो गया हो यह असम्भव नहीं है । शैवधर्म का प्रवर्तन भी वहाँ विक्रमी १०वीं, ११वीं शताब्दी से पूर्व था यह निश्चित है । [७३] भारत-प्रसिद्ध द्वारिकापुरी और सोमनाथ पाटण कच्छ के भावुक भक्तों के भी प्रमुख तीर्थधामों में से हैं । कच्छ में चार महामातृकाओं में से माता आसापुरा और रुद्राणी की पूजा परम्परा से चली आ रही है । [७४] इनमें से माता आसापुरा को कच्छ के शासक हमीर जी ( सन् १४७२-१५०६ ई० ) के समय से जाड़ेजावंश की कुलदेवी प्रस्थापित किया गया । शासकों की कुलदेवी होने से कच्छ की श्रद्धालु जनता के हृदय में भी देवी आसापुरा को उच्च स्थान प्राप्त हुआ । माता आसापुरा की किस भाव और नम्रता से भक्ति की जाती थी इसका पता इन दो प्रार्थनाओं

ooooooo

७१ " वैष्णव-धर्मनो संक्षिप्त इतिहास " ले० श्री डी० के०शास्त्री, पृ० ३६१

७२ " शाक्त-सम्प्रदाय ", पृ० १०५, ले० श्री नर्मदाशंकर देवशंकर मेहता

७३ " शैवधर्मनो संक्षिप्त इतिहास", पृ० ५३ और १५२, ले० श्री - डी० के० शास्त्री

७४ " शाक्त-सम्प्रदाय ", पृ० ११० ले० श्री नर्मदाशंकर देवशंकर मेहता

से चल जाता है :

(अ) " हे माता । न मैं कुछ जानता हूँ, न समझता हूँ, तू सर्वज्ञ है । मुझे भाग्य और लक्ष्मी का वरदान दे । "[७५]

(आ) " जिस प्रकार किसी तम्बू की ऊँचाई और स्थिरता का आधार उसके साथ लगी मजबूती से खींची हुई रस्सियाँ हैं, उसी प्रकार मालिक की अर्थात् हे देवी । तेरी, बड़ाई (महानता)अपने भक्तजनों पर की गई तेरी कृपा पर है । " [७६]

राव हमीरजी ने (सन् १४७२-१५०६ ई० ) आसापुरा के स्थानक"मातानो मढ " की यात्रा करके वहाँ के रक्षक एवं पुजारी को भूमि और ग्रामदान किया । इतना ही नहीं उनको " राजा " का उच्च पदक प्रदान किया जो स्वयं कच्छ के शासक से भी महान् माना गया । यदि कोई जाडेजा शासक " मढ " को जाता तो उसे प्रथम इस "राजा " का अभिवादन करना पड़ता जो अपने उच्च आसन पर स्थित रह कर उसे स्वीकृत करता । उल्टा यदि " राजा " को किसी समय शिष्टाचार का प्रत्युत्तर देना होता तो उसे अपने आसन के साथ महाराव के निवास स्थान तक पहुँचाया जाता जहाँ भी वह आसनस्थ रह कर ही महाराव से मिलता ।[७७] ये " कापड़ी राजा " कहे जाते थे और उनकी वंश परम्परा इतनी अनुशासित होती थी कि किसी भी झगड़े-फसाद के बिना एक "राजा " के पश्चात्

ooooooo

७५ (अ) " जाणा न का बुझां, बुझे ती तुं बाई
ढचर मत्थे ढोरिए, तुं आसपरा आई । "

(आ) " ऊंचा तंबू ताणजे बल लगे तणियां ।
बातां चंगाई नी-जे करे से बडादठ धणीयां । "

७६ " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५ से ये प्रार्थनाएँ उद्धृत की गई हैं ।

७७ " दी ब्लैक हिल्स ऑफ़ कच्छ ", पृ० १०४-१०५, लै० एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स ।

दूसरा " राजा " अधिकार प्राप्त करता जाता था । [७८] राव हमीर के प्रति जाम रावल द्वेषभाव रखता था । इसे दूर करके जाम मित्र बनने का आकांक्षी था । इसलिये उन्होंने रावल को माता आसापुरा के सामने वैरभाव भूलने की प्रतिज्ञा करने का आमंत्रण दिया । जिसके अनुसार जाम रावल ने प्रतिज्ञा करने का ऊपरी दिखावा किया । परंतु हमीरजी ने माता के साक्ष्य में पूर्ण श्रद्धा से की गई प्रतिज्ञा के पालन करने में अपने प्राण गँवा दिये ।

कच्छ के शासकों ने हिन्दू धर्मावलम्बी होकर भी धार्मिक उदारता की नीति अपनायी थी । [७९] सन् १६६६ ई० के बाद कच्छ में प्रसिद्ध औलिया पीर शाह मुराद ने अपना प्रभाव स्थापित किया था तब से शाह मुराद को तत्कालीन शासक से लेकर जन सामान्य तक सभी ने सम्मानित किया था । [८०] कच्छ के मच्छीमारों एवं नाविकों के लिए शाह मुराद अत्यंत पूज्य हो गये थे । कच्छ के ऐतिहासिक अनुक्रम के अन्तर्गत राव रायधन के शासनकाल के समय में ( सन् १६६६ से १६९८ ई० ) हुए मुग़ल आक्रमण के प्रसंग में हम देख आये हैं कि इन्हीं शाह मुराद के बीच-बचाव करने से मुआज़िम बेग़ ने आक्रमण हटा लिया था । कच्छ जैसे प्रदेश में जहाँ मुसलमानों की जनसंख्या नगण्य नहीं थी, वहाँ के शासक यदि इस्लाम को सम्मानित करते थे तो इस में उन शासकों की राजकीय दूरदर्शिता ही स्पष्ट होती है, धर्म-भावना नहीं । महाराव देसल जी के समय में हुए दो दो मुग़ल आक्रमणों का

oooooooo

७८ "दी ब्लैक हिल्स" पृ० १०५

७९ (अ) वही, पृ० १००

(आ) " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० ६४, ले० जेम्स०एम० कैम्पबेल

८० " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १२२ से १२४ ले० एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स

सामना करनेवालों में हिन्दू के साथ मुसलमान भी थे । यह देसल जी की समान धर्मभावना का ही परिणाम था । [८१]

उपर्युक्त विवरण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कच्छ धर्मसहिष्णु प्रदेश था । यहाँ शासक से लेकर जन सामान्य तक में वैष्णव, शैव, शाक्त साधनाओं कि अतिरिक्त इस्लाम धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण था। इन प्रसिद्ध धर्मों के अतिरिक्त जैन धर्म का प्रचार भी यहाँ हुआ । यहाँ के व्यापारी वर्ग का यह प्रमुख धर्म था । इसके अतिरिक्त यहाँ के श्रद्धालु जन-समाज में नागपूजा और अन्य मध्ययुगीन विभिन्न साधनामार्गों का अनुसरण भी किया जाता रहा था ।

युवराज कुँवर लखपतिसिंह की माता महाकुँवर वैष्णव धर्म में दीक्षित थीं । उन्होंने कच्छ के प्रसिद्ध तीर्थस्थान नारायण सरोवर में सन् १७३४ से १७४० ई० के बीच में त्रीकमराय, लक्ष्मीनारायण, गोवर्द्धननाथ, आदि नारायण, द्वारिकानाथ, रणछोड़राय तथा लक्ष्मीजी के मंदिर एक ही पंक्ति में बनवाये थे जिनकी भव्यता भक्तों को श्रद्धावनत कर देती है । [८२] विविध धर्मों के प्रति महाराव देसल जी का समभाव जैसा अभी कहा गया है कि एक चतुर शासक की दूरदर्शिता का ही परिचायक था । फिर भी उनके समय के प्रसिद्ध श्रद्धापात्र " जख देवों " तथा अपने आध्यात्मिक गुरु दादा मेंकण के प्रति उनकी सम्मान भावना शासक की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता ही मानी जायेगी । भुज के बाज़ार में स्थित " जखजार " नामक मंदिर " नागर चकला " स्थित दादा मेंकण का अखाड़ा (या आश्रम) इसके प्रतीक हैं । [८३] इसी प्रकार युवराज कुँवर लखपतिसिंह की धार्मिक आस्था उनकी तथा उनके आश्रित कवियों की रचनाओं में मिलनेवाले अनेक उल्लेखों को पढ़ने से लगता है कि शिव-भक्ति के प्रति अधिक झुकी हुई थी । लेकिन उन्होंने

oooooooo

८१ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ. १२८-१३१.
८२ (अ) " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० २४६-२४७
(आ) " कच्छनुं संस्कृति दर्शन", पृ० ५७ ले० रामसिंह जी राठौड़
८३ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० ८४, ८५ और १३८

" सदाशिव-ब्याह " लिखकर अपनी " शविभक्ति का जितना प्रमाण दिया है, उससे कहीं अधिक भाव-प्रवण कृति के रूप में " लखपति भक्ति विलास " लिख कर अपनी वैष्णव भक्ति का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है । यही नहीं, सन् १७४४ में खुदवाये गये, जैनों की अंचल शाखा के प्रसिद्ध गुरु जीवाजी तथा उनके शिष्य हंस सागर महाराज के पदचिह्नों पर महाराव द्वारा निर्मित सुंदर कलात्मक छत्र उनके जैनधर्म के प्रति सम्मान का द्योतक है । [८४] इस धार्मिक भावना के मुक्त वातावरण का एक अन्य प्रमाणभूत उल्लेख भी प्राप्त होता है। संवत् १८०५ में भुज में जो बहुत बड़ा धर्म सम्मेलन हुआ था, उस प्रसंग का शिलालेख भी प्राप्त होता है । यह शिलालेख अपूर्ण है । उसका एक टुकड़ा ही अब मिलता है जिस में निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है —[८५]

" विक्रमी संवत् १८०५ वैशाख सुद १ शुक्रवार को नगर भुज के देसलसर

oooooooo

८४ " बम्बई गज़ेटियर", ~~बृ०-५~~ वॉ० ५, पृ० २४५

८५ यहाँ उक्त अपूर्ण शिलालेख की प्रतिलिपि दी जाती है :

" ० ० ० ० ।।। —— स्वस्ति श्रीमन विक्रमातित संवंत १८०५ वर्षे सालीवाहन सन् १६७१ प्र० वैसाख सुद ? सुके श्री भुज नगरे देसलसर मध्ये महाराज राओ श्री देसल जी सवरा मंडप कीधो ते मंडप माहे निकलंक ज्योती स्थापना कीधी वैसाख सुद २ सनीवारे त्यां साधु संत कच्छ नां त्था सींधनां हेद्राबाद सुधी त्था अजमेर अमरकोट थल पारकर वावसुई त्था मारवाड़ जतवार अमदावाद सुधी मालावाड़ गोहेलवाड़ गीरनार सोरठ काठीआवाड़ त्था हालार पोरबंदर मधुकांठानां त्था देस देसनां साधु लख सवा भेगा थया तेने दिन १० सुधी नित नवा भोजन जमाड़ी आप्या छे, सर्व संत ने रूडा भावे घोड़ा त्था हीरा त्था सुवर्ण कोरीऊं दईने सीख दीधी घणुंज आनंद पामीआ लीया सर्व संत भली भावे संतोसीआ वैसाख सुद ५ देसर सर नो मर्या कीधो वैसाख सुद ७ गुरू ने दाड़े तुला कीधी सहस्र ३५००० वालीआ ते ब्राह्मण १०,००० ने दक्षणा दीधी चोरासी कन्यादान गोदान भुमीदान ——"

कच्छ के वर्तमान राजकवि शंभूदान अयाची ने इस लेख की प्रतिलिपि भेजकर लेखक को आभारी किया है ।

के मध्य महाराव देसल जी ने " शिवरा मंडप " बनवाया और उसमें निष्कलंक ज्योति (शिवलिंग ) की प्रस्थापना की । वैशाख सुदी २ शनिवार को कच्छ, सिंध, हैदराबाद, अजमेर, अमर कोट, थल पारकर, वावसुई, मारवाड़, जतवार, अहमदाबाद, झालावाड़, गोहिलवाड़, गिरनार, सोरठ, काठियावाड़, हालार, पोरबंदर, मधुकांठा आदि देश के दूर दूर के सवालाख साधु संत आये । उनको १० दिनों तक नित्य नवीन भोजन दिया गया । सभी संतों को सद्भाव से घोड़े, हीरे, सुवर्ण, कोरी इत्यादि की विदाई देकर अत्यन्त आनंद प्राप्त किया और दिया । सभी संतों को पूर्ण संतुष्ट किया । वैशाख सुदी ५ को " देसल सर नो मर्यो " करके वैशाख सुदी ७ गुरु के दिन ३५००० की तुला हुई जो १००० ब्राह्मणों को दक्षिणा रूप में दी गई । ८४ कन्यादान, गोदान, भूमिदान - - - - - - - - - "

उपर्युक्त शिलालेख एवं धर्म सम्मेलन यहाँ के धार्मिक वातावरण का ज्वलंत उदाहरण है । यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है । ऐतिहासिक विवेचन के अंतर्गत यह देखा गया है कि महाराव देसल जी को सन् १७४२ ई० में युवराज लखपतिसिंह ने क़ैद कर लिया था और कच्छ के सत्ताधीश बन गये थे । इस ऐतिहासिक घटना के सात वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् सं० १८०५ अर्थात् सन् १७४९ ई० में महाराव देसल जी ने जो अब भी बंदी थे, यह धर्म कार्य कैसे सम्पन्न किया होगा ? परंतु उक्त शिलालेख के साक्ष्य के आधार पर यह कहना न्यायसंगत होगा कि बंदी होते हुए भी महाराव देसलजी ने ही यह महान् धर्म-कार्य करवाया होगा । इससे दो बातें प्रकाश में आती हैं — प्रथम अपने पिता को बंदी बना कर सत्ताधीश हो जाने पर भी लखपतिसिंह ने अपने पिता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान की होगी और दूसरे यह कि धर्मकार्य के लिए इतना विपुल धन खर्च करने में उनकी पूर्ण सहमति होगी।

उपर्युक्त विवेचन से तत्कालीन धार्मिक वातावरण के साथ साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भोग-विलास में अपव्ययी महाराव लखपतिसिंह इन धार्मिक कार्यों के प्रति भी उदारता से व्यय करते थे । [८६]

साहित्यिक परिस्थिति :

कच्छ प्रदेश की अक्षुण्ण साहित्य-परंपरा कच्छी बोली में कंठस्थ रूप में मिलने वाले लोक साहित्य की है । परंतु इसके अतिरिक्त समय-समय पर यहाँ राजस्थान के चारण कवियों तथा व्रजभाषा के कवियों को राज्याश्रय मिलता रहा है । इनमें भी चारण कवियों की " रत्नू " शाखा को कच्छ के जाड़ेजा शासकों के साथ परम्परागत रूप में जोड़ा गया है । [८७] इस प्रकार कच्छ-प्रदेश के समकालीन साहित्यिक वातावरण के निर्माण में कच्छी, राजस्थानी और व्रजभाषा में रचित साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है । कच्छी बोली में रचित साहित्य प्रायः कंठस्थ अधिक मिलता है जबकि राजस्थानी और व्रजभाषा का लिखित रूप भी प्राप्त होता है ।

८६ (अ) " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० १०१-१०३ ले० जयरामदास नय गांधी
(आ) " कच्छ देशनो इतिहास ", पृ० ४६, ले० आत्माराम केशवजी द्विवेदी

८७ " सौदा अर सीसोदिया, रोहड़ अर राठौड़ ।
दुरसावत अनै देवड़ा, जादव रत्नूं जोड़ ।। "
अर्थात् : " सौदा और सीसोदिया, रोहड़ और राठौड़, दुरसावत और देवड़ा तथा जादव (जाड़ेजा) और रत्नूं की जोड़ होती है । " यह दोहा " राजस्थानी सब्द कोस ", प्रथम खंड (राजस्थानी हिंदी बृहत् कोश) के सम्पादक श्री सीताराम जी लालस, जोधपुर, ने लेखक के साथ हुए वार्तालाप में सुनाया था ।

राव भारमल के समय (सन् १५८६ ई० से १६३२ ई० ) में अनेक कच्छी कवियों को राज्याश्रय प्राप्त होने का ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है ।[८८] विद्वानों ने बताया है कि राव भारमल के काव्य-प्रेम की कीर्ति फैल जाने के कारण अनेक कवियों ने उनके दरबार में आकर राज्याश्रय ग्रहण किया था । परंतु यह साहित्य-परम्परा कंठस्थ ही रही ।[८९] यहाँ संक्षेप में उस प्रसिद्ध कंठस्थ कच्छी साहित्य का नामोल्लेख किया जाता है, जिसका यथेष्ट रूप प्रस्तुत विवेच्यकाल में अवश्य रहा होगा । यह साहित्य लोक कथात्मक है । उमरख मारूई, मदुओ मोरी, कोरू पिंगळ, शेणी हमीर, मुमल राणो, कपूरी कारायल, राजी पुनराजी, ऊढ़ो होथल, फूल सोनल, पुंअरो राजैं, जेशल तोरल, रूपां बीजल, गुंतरी, जीकड़ी जगड़शा, लाखो फूलाजी, अबड़ो अणमंग, धोरम, मामई और ठोलीधर के ढोली की प्रसिद्ध लोक कथाएँ इस कंठस्थ लोक-साहित्य का प्रसिद्ध अंग बनी हैं ।[९०] ये कथाएँ दूहा, भजन, गीत, काफी, सलोका, कहावत, गुजारत आदि कच्छी साहित्य के प्रसिद्ध रूपों एवं छंदों में कही सुनी जाती हैं ।[९१] ये लोक-कथाएँ प्रमुखतया प्रेम, त्याग और साहस की उच्च भावनाओं से प्रेरित हैं । इसके अतिरिक्त कच्छी लोक-साहित्य में संतकाव्य का भी एक विशिष्ट स्थान है । हमारे विवेच्यकाल के प्रसिद्ध संत कवि दादा मेंकण का अध्यात्म विषयक उपदेशात्मक साहित्य प्रसिद्ध रहा था ।[९२] दादा मेंकण

ooooo

८८ " भारमल भेटे भूपत कांउं भेटिये,

कल्पतरु हेठो धतुर कांउं धंधोड़ियें । "

अर्थात् " राव भारमल से मिलने के बाद अन्य भूपतियों से क्या मिलना, कल्पतरु के नीचे बैठकर धतूरे को हिलाने से क्या फायदा? "

("कच्छनुं गुजराती साहित्य " पृ० १८ तथा १९ ले० रामसिंह राठौड़,

८९ " कच्छनुं गुजराती साहित्य ", पृ० १९ (९०) वही, पृ० १७

९१ वही, पृ० १७

९२ " संत मेंकण दादा " तथा " पुरातन ज्योत " ले० झवेरचंद मेघाणी

लखपतिसिंह के पिता महाराव देसल जी के आध्यात्मिक गुरु थे जिनको विद्वानों ने कच्छ का तत्वज्ञानी लोक कवि तथा " सैंट क्रिस्टफर " और " कबीर " से तुल्य माना है । [१३] इस प्रकार कच्छ का यह प्रसिद्ध कंठस्थ साहित्य महाराव लखपतिसिंह के समय में अवश्य लोकप्रिय हो गया होगा और महाराव अपने बचपन एवं यौवनकाल में उनमें अंकित प्रेम, त्याग, साहस, भक्ति और वैराग्य की उच्च भावनाओं की सरस कथाओं से प्रभावित हुए होंगे, यद्यपि इसके लिये कोई प्रमाणभूत उल्लेख प्राप्त नहीं होता । दादा मेकण का सम्पर्क लखपतिसिंह के पिता से निकट का था, इसलिए यह अनुमान सहज ही किया ~~जा~~ जा सकता है कि उनके आध्यात्मिक, उपदेशात्मक साहित्य ने उनके हृदय को भी स्पर्श किया होगा ।

जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है, " रत्नू " चारणों की परम्परा को कच्छ के जाड़ेजा शासकों के साथ जोड़ा जाता है । इस परम्परा को प्रथम राज्याश्रय कब प्राप्त हुआ, महाराव लखपतिसिंह तक इसकी क्या स्थिति थी तथा महाराव ने अपने समय में इस परम्परा के होते हुए भी व्रजभाषा के कवियों को क्यों आश्रय दिया, ये सभी महत्त्वपूर्ण बातें लखपतिसिंह की साहित्याभिरुचि को स्पष्टतः समझने के लिए अनिवार्यरूप ~~से~~ में विचारणीय हैं । उक्त चारण परम्परा के प्रसिद्ध चारण कवि तथा लखपतिसिंह के समकालीन हमीरदान रत्नूं ने अपने " लखपति गुण पिंगल " ग्रंथ में, कच्छ में अपनी कवि परम्परा के प्रारम्भ का इस प्रकार उल्लेख किया है :

> " राव तमाची जी के तुडित्रांण (पुत्र ? ) ने कविताएं सुनकर पूछा, हे कवि, तुम किस शाखा के हो, क्या नाम है और

ooooo

१३ (अ) " कच्छनुं गुजराती साहित्य ", पृ० ३१

(आ) " भुज(कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला", पृ० २, ले०डॉ.कुँवरचंद्र प्रकाश सिंह

(इ) " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १२७

कहाँ के रहने वाले हो ? कवि ने उत्तर में कहा, वह जैसलमेर का, रत्नूं शाखा का है, भारमल नाम है । संवत् १६१७ में भारमल को " अयाची " बनाया गया । " [९४]

इस साक्ष्य के आधार पर यह निश्चित होता है कि कवि भारमल को संवत् १६१७ में राज्याश्रय मिला और उन्हें " अयाची " घोषित किया गया । [९५] हमीरदान रत्नू इस युग की चारण परम्परा

ooooo

९४ " रूपक सांभलि रीजीऔ । जाडेजौ गुण जांण ।
पूछण लागौ प्रीति सुं । तमाची तुडि तांण ।।१।।
किसी साष मां नांम की । वसधा केही वास ।
सहि वातां संभलानि जै । पणीऔ प्रगड प्रहास ।।२।।
रत्नूं जैसलमेर रा । जनंमभोमि जोधांण ।
छतौ भारमल नांम छै । ईम कही आइहनांण ।।३।।
समत सोल सौ सतरै । गहडत्तंमण वडगात्र ।
कीऔ अजाची करिकृपा । सुजि भारमल सुपात्र ।।१६ ।। "

" लखपति गुण पिंगल रै आदि जदवंस वरणणं " की प्रति जोधपुर निवासी श्री सीताराम जी लालस से प्राप्त हुई जिसकी मूल प्रतिलिपि लेखक के पास सुरक्षित है ।

९५ हिन्दी के विद्वानों में जो यह भ्रम है कि महाराव लखपतिसिंह ने भारमल और हमीरदान रत्नूं को अपने दरबार में आश्रय दिया और उन्हें लक्षपसाव और जागीरी के चार गाँव अर्पित कर " अयाची " बना दिया, उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर दूर हो जाना चाहिये । रत्नूं शाखा में भारमल प्रथम " अयाची ", हुए, जिस शाखा में हमीरदान " अयाची " परंपरागत ही सिद्ध हो जाते हैं और कच्छ में वे बचपन से थे इसलिए स्वाभाविक ही वे लखपतिसिंह के दरबार के चारण थे । उक्त भ्रमयुक्त मत के लिए देखिए " भुज(कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला " पृ० २०, ले०कुँवरचंद्र प्रकाश सिंह

का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे बचपन से ही कच्छ में रहते थे । [96] उन्होंने राजस्थानी में अनेक ग्रंथ रचे, जिनमें से (१) गुणपिंगल प्रकास सं० १७६८, (२) हमीर नाममाला सं० १७७४, (३) जदुवंश वंशावली सं० १७८०, (४) देसल जी नी वचनिका सं० १७८५, (५) लखपति गुण पिंगल सं० १७९६, (६) ज्योतिष जडाव सं० १७९६ के बाद, (७) भागवत दर्पण, (८) ब्रह्मांड पुराण, (९) चाणाक्य नीति, (१०) भरतरी सतक, (११) महाभारत रौ अनुवाद छोटौ व बड़ौ आदि गिनाये जाते हैं । [97]

उक्त रचनाओं में से " गुण पिंगल प्रकास " और " लखपति गुण पिंगल " दोनों ही छंदशास्त्र के सुंदर ग्रंथ हैं । " लखपति गुण पिंगल" उनमें से अधिक प्रसिद्ध है । " हमीर नाममाला " डिंगल कोषों में सब से अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित है । "जदुवंश वंशावली " में जाड़ेजा वंश का इतिहास तथा " देसलजीनी वचनिका " में महाराव देसल जी के सर बुलंदखां के साथ हुए युद्ध का वर्णन दिया गया है । शेष ग्रन्थ विविध विषयों को लेकर रचे गये हैं ।

महाराव लखपतिसिंह के समय में हमीरदान रत्नू की रचनाओं का विशेष महत्त्व है । एक तो उन्होंने लखपतिसिंह के जन्म के ~~पूर्व~~ पूर्व से देसल जी के दरबार में रहकर विशिष्ट साहित्यिक वातावरण का निर्माण किया था । इन चारण कवियों का उनके आश्रयदाताओं की दृष्टि में

ooooo

९६ (अ) " राजस्थानी सब्द कोस " के प्रथम खंड, "राजस्थानी साहित्य " पृ० १५८

(आ) " परंपरा " पत्रिका, अंक तीन-चार, १९५६-५७ पृ० ११(सम्पादकीय) संपादक, श्री नारायण सिंह भाटी, प्रकाशक : राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर

९७ (अ) " सरस्वती" फरवरी, १९६२, लेख, " भुजनगर के राजस्थानी कवि हमीर और उनकी रचनाएँ, लेखक श्री० अगरचंद जी नाहटा

(आ) " मरु भारती " वर्ष १, अंक ३, सन् १९५३, सितम्बर, पृ० ५५ लेखक- श्री सीताराम जी लालस

कितना उच्च स्थान था इसका यह उदाहरण पर्याप्त है कि दरबार का प्रारम्भ चारण कवि की कविता तथा आसापुरा की प्रार्थना से होता था। यह प्रथा राव भोजराज जी के समय (सन् १६३२ ई० से १६४५ ई०) से लेकर सन् १९४७ तक प्रचलित रही। [९८] सं० १६१७ से अयाची बनने के बाद भारमल रत्नू सं० १७०० तक जीवित रहे। भोजराज का राज्यकाल सं० १६८८ से १७०१ तक था। [९९] इस प्रथा का निर्वाह स्वाभाविक ही लखपतिसिंह के पिता के समय में होता होगा, जिसके परिणामस्वरूप समुचित एवं प्रभावशाली साहित्यिक वातावरण का निर्माण भी अवश्य होता होगा। दूसरा, हमीरदान रत्नू के ग्रंथों में पिंगल, नाममाला, वंशावली विषयक जो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रचे गये थे वे सभी क्रमशः "गुण पिंगल प्रकास", संवत् १७६८, "हमीर नाममाला", सं० १७७४, "जदुवंश वंशावली" सं० १७८०, लखपति की दो वर्ष की अवस्था से लेकर चौदह वर्ष की अवस्था तक के काल में ही रचे गये थे। हमीरदान अपने समय के अच्छे विद्वानों में गिने जाते थे। [१००] इस आधार पर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि युवराज कुँवर लखपतिसिंह जैसे काव्यकला तथा ज्ञान के ~~जिज्ञा~~ जिज्ञासु के लिए उचित साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में ये रचनाएँ सिद्ध हुई होंगी। इसका प्रमाण

0000000

९८ "कच्छनुं गुजराती साहित्य", पृ० २०, ले० रामसिंह राठौड़

९९ हमीरदान रत्नू ने भारमल की मृत्यु का उल्लेख इस प्रकार किया है :

" अैपिणि असिआ पता अनोपंम । पसंमदार अति तेज परांकंम ।
संवत सतर भारमल क्वेसुर । पायौ चौतालै अमरापुर ।।२२।।
भुजमां सरगी हुऔ भारमल । हे किणि रहिणि जांण तल हूंतल ।
दाग तंमाची आगलि दीधौ । कैडि दीकरे छेडौ कीधौ ।।२३।।

" लखपति गुण पिंगल रै आदि जदवंस वरणण " की प्रति जोधपुर निवासी श्री सीताराम लालस जी के यहाँ उपलब्ध है।

१०० " परंपरा " अंक ३-४, १९५६-५७, संपादकीय पृ० ३३, संपादक : श्री नारायण सिंह भाटी, प्रकाशक : राजस्थान शोध-संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

यह मिलता है कि हमीरदान ने इसके बाद के अपने एक ग्रंथ " लखपति गुण पिंगल " (रचनाकाल सं० १७९६) में लखपति के पिंगल ज्ञान का विस्तार से वर्णन किया है जिसका यथास्थान सप्रमाण उल्लेख किया जाएगा । यहाँ इतना ही अभिप्रेत है कि राजस्थानी साहित्य तथा उसके रचनाकार कवि हमीरदान रत्नूं प्रस्तुत विवेच्यकालीन साहित्यिक वातावरण के प्रमुख निर्माताओं में से थे ।

महाराव लखपतिसिंह के समय की साहित्यिक प्रवृत्तियों को अपूर्व प्रोत्साहन ही नहीं मिला, अपितु उनकी सर्वांगीण उन्नति का जो एक विशाल आयोजन किया गया, वह अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्व रखता है । तब से लेकर आज तक पाई जाने वाली ग्रंथमाला साहित्य के सर्जन की समृद्ध परम्परा इसका साक्ष्य उपस्थित करती है । इस पर स्वतंत्ररूप में परवर्ती अध्याय में ~~किया~~ विचार किया जा रहा है । यहाँ पूर्ववर्ती विवेचन के निष्कर्ष रूप में यह उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि लखपतिसिंह के शासन काल में साहित्यिक वातावरण की उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था ।

०००